राजीव मित्तल
बैहर में
साइकिल

बैहर में साइकिल

राजीव मित्तल

हमेशा साथ रहने वाली स्तृतियों को

अपनी बात

अगर कबीरा पत्रकारिता के पेशे से जुड़ी सोच का नतीज़ा कहूं तो बैहर में साइकिल यादों का वो घड़ा है जो जीवन के साठ वर्षों में बूँद-बूँद भरता गया...किन्हीं भी कारणों से जिन शहरों में बसना हुआ, उन शहरों की धड़कन से अपने को जोड़ना आदत का हिस्सा बनता चला गया...शहर से जुड़ने या उस पर खीज उतारने का मौक़ा दिया रात्रि जागरण की बरसों पुरानी आदत ने, जिसमें नितांत अपने साथ ही होता था...इस दौरान जो भी संगसाथ रहा, वह स्मृतियों में बसता चला गया...संगसाथ का यह सफर शहरों या इंसानों के साथ-साथ जीव-जंतुओं और पेड़-पौधों से भी जुड़ाव का बायस बनता चला गया...स्मृतियों की खो-खो का ही नतीज़ा है बैहर में साइकिल....

मुज़फ्फरपुर में रहते बिहार के हर पक्ष पर लिखे गये आलेख अख़बार की सीमाओं में क़ैद होकर रह जाते थे, इसलिए उनका आकार-प्रकार छोटा ही रहा...लेकिन जब पहल और अन्य पत्रिकाओं से जुड़ा तो लेखों का स्वरूप विस्तार पा गया...वही लेखन पुनरावलोकन में समाहित है...

सरकारी नौकरी में रहते विदेशी मामलों पर लिखना शुरू हो चुका था...वहां से मुक्ति के बाद नवभारत टाइम्स, जनसत्ता और स्वतंत्र भारत में अपनी रूचि से जुनून की हद तक जुड़े संगीत और फ़िल्म जैसे विषयों पर ज़ोर रहा...वो सब समय के साथ बिला गया...बाद में कभी कलम उधर की तरफ मुड़ जाती...उस तरह का लेखन यदाकदा में समेटा है...

विभूति बाबू के उपन्यास आरण्यक में जैसे पटवारी का भाई युगलप्रसाद घने जंगलों को सजाने का काम जंगली फूलों के बीजों को रहस्यमय रास्तों पर छिटकाते हुए करता था, उसी तरह अपने लेखन में भी न जाने कितने आत्मीयों से जुड़ने का काम करता चला आ रहा हूँ...आशा है पाठक भी उससे अछूते नहीं रहेंगे।

5 जनवरी, 2015 **-राजीव मित्तल**

क्रम

स्मृति / 5

पुनरावलोकल / 90

यदाकदा / 165

स्मृति

अपने साथ-केवल अपने साथ होना...क्योंकि तभी यादों से जुड़ने का सुनहरा मौका लपक कर सामने आता है। ये संस्मरण उसी सुनहरे मौके का प्रतिफल हैं। कई बार मिले ऐसे मौकों ने पचास साल तक का सफर तय करवाया है, जिसमें कुत्ते-बिल्ली से लेकर कई सारे इंसान, कई सारे शहर और कई बरसाती मौसम, तपता आसमान, कंपकंपाती सर्दियां, चमकीली रातें और दिन के अंधेरे हैं।

मेरठ की बिल्ली और उसकी बच्चियां

2008 की बरसात में मेरठ में कदम धरते ही दिल डूब गया। एक हफ़्ते किसी तरह टिम्बक टू होटल में गुजार शास्त्रीनगर में घर लिया। वहां भी जबलपुर की याद सताती। ऑफिस में ज़्यादा से ज़्यादा समय गुजारने की कोशिश करता। एक सुबह घर की मुंडेर पर आंखें झपकाती वो दिख गयी। बड़े हो गये तीन बच्चे साथ में बैठे उधम मचा रहे। सभी गोरे चिट्टे। नीचे सड़क से डंडा दिखाया जा रहा था। मकान मालिक से पता चला कि किसी के घर पाली जा रही वो बिल्ली अचानक घर से बाहर कर दी गयी। अपना अपराध तो उसे पता नहीं, पर एक मानव के दुनिया में कदम धरने के कारण यह निर्वासन झेलना पड़ रहा था उसे।

पता नहीं किस क्षण रसोई के साथ लगे लोहे के जाल से उसकी ताक-झांक चालू हो गयी थी। छत वहीं से शुरू होती थी, जहां उसका ठिकाना था। एक सुबह चाय बनाने को दूध उबाल रहा था, कि म्याऊं-म्याऊं की आवाज़। बिल्लो रानी की निगाह दूध पर थी। ठंडा कर प्याले में डाला और ऊपर रख आया। अब हर सुबह की दूध-चाय हम दोनों साथ-साथ पीते। वो छत पर मैं रसोई में। बड़े हो गये बच्चे माँ को छोड़ और ठिकानों की तरफ निकल लिए। तब तक बेटा जबलपुर से आ गया।

एक दिन रसोई में ऑमलेट का आयोजन चल रहा था कि ऊपर से मीठी म्याऊं नहीं, कर्कश आवाज़ आयी। तमतमाते चेहरे से आंखें फाड़ कर हमें देखा जा रहा था। बिहार की रंगदारी यहां भी ! हाथ बढ़ा कर अंडा डाला गया, तब आवाज नरम हुई-ठीक है, थोड़ा और। बेटे ने ऊपर हाथ बढ़ाया तो देवी जी की चोंचलेबाजी शुरू हो गयी। अपनी गर्दन जंगले में अंदर डालकर बेटे के हाथ पर रख दी- हां, ढंग से सहलाओ। अगली सुबह वो कूद कर, साथ बैठ गयी। अब वह खाने के सामान में अपना हिस्सा ऊपर से ही बोलकर अलग रखवा लेती। पहले हाथ बढ़ा कर प्यार करना पड़ता, अब गोद में बैठ कर

लाड़ लड़ाती। सुबह ऑफिस की भागम-भाग में भी दस मिनट उसे देने ज़रूरी थे। बाकी समय उसका याराना बेटे के साथ।

बीच-बीच में लखनऊ या और कहीं जाना हुआ तो घर कुछ दिन बंद रहता। लौटने पर शिकायतों का अंबार-कहां गये थे नालायकों मुझे छोड़कर, दो दिन से चूहे खाकर गुज़ारा कर रही हूं, मार भी खायी एक के घर में। आंखें झपका कर चोट दिखायी। वास्तव में आंख के नीचे गहरा घाव था। अब हम दो से तीन हो गये थे।

अगले चार महीने रुटीन में। बीच-बीच में वो भी कई-कई दिन गायब रहती। सड़क पर या नाली के किनारे अपने दोस्त के साथ मटरगश्ती करती दिख जाती। खूब नैन मटक्को चलती उसकी। आवाज़ देने पर भाग खड़ी होती। गर्मियां शुरू हो चुकी थीं। अब उसके लिये पानी का भी ध्यान रखना पड़ता।

अप्रैल के आख़िर में उसकी दुबली-पतली काया एकाएक हरी-भरी हो गयी। आंखें चुराने लगी। अलमारी वगैरह में दुबक कर बैठ जाती। समझ में आ गया कि प्रसूति के लिये जगह तलाश रही है। होने वाले बच्चों को बिल्ले से बचाने की जुगत। हमने उसे कमरे से बाहर कर सीढ़ियों के बीच में खाली जगह दिखा दी कि जो कुछ हो यहीं करना, नीचे का दरवाज़ा बंद रहता है। बिल्ले का कोई ख़तरा नहीं। कुछ ही दिन में मातृत्व का पूरा असर दिखने लगा। मई आधा गुजर गया। एक रात नौ बजे ऑफिस में बेटे का फोन आया कि घर आकर चार बच्चों के दर्शन करो। सारा काम छोड़ घर भागा। बेटा नीचे ही मिल गया। सीढ़ियों के कोने में माता जी के दर्शन कराये। आंखें खोलकर मुस्करायी और बच्चों को चाटने लगी। चारों थन से लगे थे। बेटे ने बताया सब मादा हैं। अब अपना परिवार महिला प्रधान हो गया। बेटे ने आंगन में उजाला कर चारों को ऊपर लाकर दिखाया। दोनों हथेलियों में सब समा गयीं। बंद आंखें, हल्की-हल्की आवाज़ निकल रही, चेहरा गुलाबी, छोटी सी लाल-लाल जीभ। चारों को अपनी मां का गोरापन मिला था। तभी जच्चाघर में लेटी मां उछल कर ऊपर आयी और बच्चों को मुंह में दबाकर ले गयी।